अनुमुद्रण
दार्शनिक त्रैमासिक
वर्ष ७, अंक २

जैन दर्शन में स्याद्वाद

नी. र. वरुहाडपांडे

भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं में जैनों का स्याद्वाद एक वैशिष्ट्यपूर्ण स्थान रखता है, क्योंकि इसमें मौलिकता और समन्वय की दृष्टि दिखाई देती है। हरेक विचार में कोई न कोई सत्यांश है किन्तु वह अधूरा है। इन सब सत्यांशों का स्याद्वाद में समन्वय होकर पूरे सत्य का दर्शन होता है, ऐसा स्याद्वाद का दावा है। यह दावा किस हद तक समर्थनीय है, इसका यहां विवेचन करने का प्रयत्न करता हूँ।

सामान्य और विशेष

प्रत्येक पदार्थ अनेक रूप होता है। यह सिद्ध करने के लिए स्याद्वाद सामान्य और विशेष इनका उदाहरण लेता है। हरेक पदार्थ कुछ पदार्थों से समान होता है और अन्य कुछ पदार्थों से भिन्न होता है। जैसे घट अन्य घटों से समान और घट व्यतिरिक्त पदार्थों से भिन्न होता है। यह सामान्य और विशेष घट के ही धर्म हैं, उससे भिन्न नहीं हैं। नैयायिक के तौर पर धर्म को अगर धर्मी से पृथक् पदार्थ मानें तो एक ही पदार्थ घट को उस में अनन्त धर्म होने के कारण अनन्त पदार्थ मानना पड़ेगा।

कोई वादी कहते हैं कि केवल सामान्य ही सत्य है। दूसरे कहते हैं कि केवल विशेष ही सत्य है और तीसरे कहते हैं कि सामान्य और विशेष दोनों स्वतन्त्र रूप से सत्य हैं।

केवल सामान्य ही सत्य है, ‡ कहने वाले पूछते हैं "आप के विशेषों में विशेषत्व है या नहीं? अगर नहीं है तो विशेष का कोई स्वभाव ही नहीं रहा। जिस गौ में गोत्व नहीं है वह गौ नहीं है। अगर विशेषों में विशेषत्व है तो यही सामान्य हुआ। अर्थात् विशेष का स्वभाव ही सामान्य सिद्ध हुआ।"

विशेष एक पदार्थ को दूसरे पदार्थ से व्यावृत्त करता है, ऐसा कहा जाता है। व्यावृत्ति उस पदार्थ के स्वभाव से नहीं हो सकती। स्वभाव भावरूप है। उससे अभावरूप व्यावृत्ति कैसे हो? अगर स्वभाव से ही व्यावृत्ति होती हो तो पदार्थ से भिन्न अतीत या अनागत जितनी भी वस्तुएं हैं सभी की व्यावृत्ति करने का स्वभाव में सामर्थ्य मानना पड़ेगा। जो पदार्थ ज्ञात को ज्ञात ही नहीं उनका व्यावर्तन भी कैसे हो सकता है? क्या वस्तु को जानने वाला सर्वज्ञ के समान अतीत, अनागत सभी वस्तुओं का व्यावर्तन करने में समर्थ होता है?

---

‡. स्वतोऽनुवृत्ति व्यतिवृत्तिवा यो भावा न भावान्तरनेयरूपाः,
परात्मतत्वाद् तथात्मत्वाहूयं वदन्तोऽकुशला स्खलन्ति। कारिका ४।

पदार्थनयवादी कहते हैं कि क्षणस्थायी विशेष ही सत्य हैं। सामान्य नामक कोई पदार्थ नहीं है। जब हम गौ को देखते हैं तो किसी एक गौ को ही देखते हैं। गोत्व सामान्य को नहीं देखते।

यह सामान्य एक है या अनेक? अगर एक है तो सर्वगत है या नहीं? अगर सर्वगत है तो पट में भी घटत्व सामान्य रहेगा। अगर घटत्व और पटत्व भिन्न हैं तो यही विशेष हो गये।

अर्थक्रियाकारित्व यही वस्तु का लक्षण है। यह लक्षण विशेषों को ही लागू होता है। गोव्यक्ति का ही दूध निकाला जाता है, गोत्वसामान्य का नहीं।

नैगमनयवादी कहते हैं कि सामान्य और विशेष स्वतन्त्र पदार्थ हैं क्योंकि उनके धर्म भिन्न हैं। गोत्व सर्वगत है। परन्तु कोई एक गौ सर्वगत नहीं है।

ये तीनों पक्ष असमर्थनीय हैं क्योंकि वस्तु सामान्य-विशेषात्मक होती है। केवल विशेष का या केवल सामान्य का कभी ज्ञान नहीं होता।

दो वस्तुएं समान हैं ऐसी प्रतीति होती है, यह बात तो हरेक को माननी ही पड़ती है, यह प्रतीति ही सामान्य की प्रतीति है। यह समानता समान व्यक्तियों से स्वतन्त्र नहीं रहती, इस लिये उसको सामान्य नहीं कहा जा सकता, यह युक्तिवाद ठीक नहीं, क्योंकि वस्तु का रंग और आकार भी वस्तु से स्वतन्त्र नहीं होता। फिर भी उनको वस्तुस्वरूप ही नहीं माना जाता।

नित्यता और क्षणिकता

सामान्य और विशेष के समान क्षणिक और अक्षणिक ये भी दो पक्ष हैं। कोई वादी पदार्थ को क्षणिक और कोई नित्य मानते हैं। परन्तु पदार्थों की नित्यता क्षणभंगवाद के युक्तिवादों से असिद्ध की जा सकती है। इन्हीं युक्तिवादों से पदार्थ की क्षणिकता भी बाधित होती है। क्योंकि क्षणिक पदार्थ न क्रम से कार्य कर सकता है और न अक्रम से। क्षण में पूर्व और पश्चात् यह क्रम होता ही नहीं। अक्रम से, यानी एक काल में, भी क्षण कार्य नहीं कर सकता क्योंकि एक ही क्षण के अनेक कार्य दिखाई देते हैं, जैसे ज्वाला की एक ही धड़कन से बत्ती का जलना और तेल का ऊपर खींचा जाना। अनेक कार्य करने वाला क्षण एक नहीं माना जा सकता।

क्षणिक पदार्थ न अपने सत्ताकाल में अर्थक्रिया कर सकता है और न अपने असत्ताकाल में। सत्ताकाल में क्रिया करे तो समकालवर्ती सभी भावों में परस्पर कार्यकारण भाव मानना पड़ेगा। असत्ताकाल में क्रिया हो ही नहीं सकती।

इसके विरुद्ध क्षणिकवादी कहता है कि अक्षणिक में न क्रम से क्रिया हो सकती है न एक साथ। एक क्रिया के बाद दूसरी क्रिया होना एक स्वभाव का नाश होकर दूसरे स्वभाव की स्थापना हुए बगैर नहीं उपपन्न होता। अगर अर्थक्रियाकाल में एक क्रिया जाकर दूसरी आती है तो नित्यता कहाँ रही? एक साथ भी सारी क्रियाएं नहीं हो सकतीं, क्योंकि ऐसा होना प्रत्यक्ष-विरुद्ध है।

अर्थात् पदार्थ नित्य भी नहीं है या अनित्य भी नहीं है। यह नित्यानित्यरूप है, क्योंकि

नित्यता और अनित्यता दोनों के विरुद्ध समर्थनीय आक्षेप उठाये जा सकते हैं।

सत्कार्य और असत्कार्य

नित्यानित्यत्व के समान सत्कार्यवाद और असत्कार्यवाद इन दोनों का समर्थन हो सकता है।

सांख्य कहते हैं कि असत् की उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसलिये उत्पत्ति के पूर्व भी कार्य को सत् मानना चाहिए। इस पर कहा जा सकता है कि असत् के समान सत् की भी उत्पत्ति नहीं होती, इस लिये उत्पत्ति के पूर्व कार्य को असत् मानना चाहिये। जो सत् ही है उसकी उत्पत्ति होने की क्या आश्यकता है? इसी प्रकार कार्य की सर्वथा सत्ता मानने से मृत्तिका और घट इनका उपादान और उपादेय सम्बन्ध भी नहीं माना जा सकता, क्योंकि घटोत्पत्ति पूर्व मृत्तिका और घटगत मृत्तिका इनमें कोई फरक ही नहीं रहेगा। अर्थात् मृत्तिका अगर घट का उपादान माना गया तो उत्पत्ति के पहले घट सत् नहीं माना जा सकता। चाहे जिससे चाहे जो उत्पन्न नहीं होता इससे भी उत्पत्ति के पहले घट को असत् मानना पड़ता है, क्योंकि मृत्तिका अगर सर्वदा घटात्मक ही रहे तो घट मृत्तिका से ही बना और किसी से नहीं, इसके लिये क्या प्रमाण रह जायगा? उत्पत्ति के पहले घट को असत् मानने से घटोत्पत्ति से मृत्तिका का नियत पूर्वभाव होने के कारण मृत्तिका को घटका कारण माना जा सकता है। परन्तु घट अगर सर्वकाल ही सत् रहे तो उससे किसी का भी नियत पूर्वभाव नहीं रहेगा। इसी प्रकार जिस में घटोत्पादन शक्ति है उसी से घट निर्माण होता है। इस युक्तिवाद से भी असत्-कार्य ही सिद्ध होता है क्योंकि जो सर्वदा सत् है उसके लिये किसी भी निर्माणशक्ति की आवश्यकता नहीं होती। अर्थात् सत्कार्यवाद के समर्थक (१) असदकरणात् (२) उपादानग्रहणात् (३) सर्वसम्भवाभावात् (४) शक्तस्य शक्यकरणात् आदि सारे युक्तिवादों से असत्कार्यवाद भी सिद्ध हो सकता है।*†

द्रव्य और गुण

इसी प्रकार द्रव्य से उसके गुण भिन्न या अभिन्न दोनों स्थापित किये जा सकते हैं। अगर द्रव्य और उसके गुण भिन्न माने गये तो 'इस द्रव्य का यह गुण है' यह वाक्य अनुपपन्न हो जायेगा। अगर घट से रक्तत्व भिन्न है तो 'घट रक्त है', 'तम रक्त नहीं है' यह पृथगात्मक प्रतीतियों को उत्पत्ति कैसे हो? घट और रक्तत्व अगर भिन्न हैं तो तम और रक्तत्व भी भिन्न है। फिर घट की विशेषता क्या रही?

घट और रक्तत्व भिन्न होने पर भी उनका समवाय सम्बन्ध है, 'तम का और रक्तत्व का समवाय सम्बन्ध नहीं है' ऐसा कहने से समाधान नहीं होता, क्योंकि समवाय का स्वरूप अनाकलनीय है। घट और रक्तत्व में समवाय है, वैसे ही तम और कृष्णत्व में भी समवाय है। ये दो समवाय एक ही हैं या भिन्न? अगर एक ही हैं तो 'रक्तत्व घट में ही है तम में नहीं'

---

*. आदीपमाव्योम समस्वभावं स्याद्वादमुद्रानतिभेदि वस्तु ... ४।

†तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्यादिति त्वदाज्ञा द्विषतां प्रभावाः। कारिका ५।

और 'कृष्णत्व तम में ही है घट में नहीं'* यह व्यवस्था कैसी हो? अगर भिन्न है तो जैसे अनेक घटों में घटत्व रहता है वैसा अनेक समवायों में समवायत्व रहता है, ऐसा मानना पड़ेगा। इस समवायत्व का समवाय से क्या सम्बन्ध है? क्या इस सम्बन्ध को भी समवाय कहा जाय? ऐसे से अनवस्था प्रसंग आ पड़ेगा।*

वस्तु प्रतिक्षण पूर्वरूप को छोड़ कर उत्तररूप धारण करती है। परन्तु इन दोनों में उसका वस्तुत्व नष्ट नहीं होता। दो पुत्रों की माता जिस प्रकार दो पुत्रों को साधारण रहती है उसी प्रकार वस्तु उत्पत्ति और नाश को साधारण रहती है।

यहां पूर्वपक्षी कह सकता है कि द्रव्य न उत्पन्न होता है न नष्ट होता है। 'नख काटा गया और फिर उत्पन्न हुआ' इस वाक्य में 'काटना और उत्पन्न होना' इन क्रियाओं का कर्ता एक ही कहा जाता है। परन्तु वस्तुतः कटने वाला नख और उत्पन्न होने वाला नख भिन्न होता है। इसी प्रकार द्रव्य उत्पन्न और नष्ट होता है। इस वाक्य से उत्पत्ति और विनाश दोनों का कर्ता कोई अविनाशी द्रव्य है, ऐसा मानना उचित नहीं।

इस युक्तिवाद पर जैन कहते हैं कि नख के उदाहरण में कर्तृभिन्नत्व प्रमाण-सिद्ध है। वैसा द्रव्य के उदाहरण में नहीं है। "यह वही द्रव्य है" प्रत्यभिज्ञा से द्रव्य का स्थिरत्व सिद्ध होता है।

जबकि किसी वस्तु का एक रूप से ज्ञान होता है तो वह द्रव्यरूप लगती है। उसी का अनेक रूप से ज्ञान होता है तो वह अनेक गुणों में विभक्त होकर प्रतीत होती है। जैसे द्रव्यरूप से घट एक है परन्तु गुणरूप से रक्त, गोल आदि अनेक प्रकार का है।

सात नय

अभी तक के विवेचन से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक वाक्य की सत्यता किसी दृष्टिकोण से ही मानी जा सकती है, सर्वथा नहीं। इन्हीं दृष्टिकोणों को जैन दार्शनिक नय कहते हैं। केवल सत् का ही आग्रह करना दुर्नय है। सत् का उल्लेख करना नय है और स्यात् सते कहना, यह प्रमाण है।

प्रमाणों से जिसका ज्ञान हुआ ऐसी वस्तु के एक देश का परामर्श करना नय है।

प्रमुख नय द्रव्य और पदार्थ हैं जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है।

नयों का वर्गीकरण और भी सात प्रकारों से हो सकता है १) नैगम २) संग्रह ३) व्यवहार ४) ऋजु सूत्र ५) शब्द ६) समभिरूढ़ और ७) एवंभूत।

इन में से पहले चार अर्थ सम्बन्धी हैं और बाकी तीन शब्द संबंधी हैं।

नैगम नय, यानी सामान्य और विशेष, इनको अत्यन्त भिन्न मानना।

सत्ता, यह सब से बड़ा सामान्य है। द्रव्यत्व, गुणत्व इत्यादि अवान्तर सामान्य हैं। अन्तिम विशेष, यानी जो किसी से सदृश है ही नहीं। इसके अतिरिक्त अवान्तर विशेष

---

* उत्पत्तेः प्राक्कार्यस्य सत्वसत्तर्थनार्थमसदकरणादि हेतुपञ्चकमुक्तं तदसत्कार्यवादपक्षेऽपि तुल्यम। पृष्ठ २६१

भी है।

संग्रह सारे विशेषों को छोड़ कर केवल सामान्य का ही स्वीकार करता है।

व्यवहार न अन्तिम विशेषों को मानता है न अन्तिम सामान्य (सत्ता) को मानता है। वह व्यवहारसिद्ध अवान्तर सामान्य और विशेषों को ही मानता है।

ऋजुसूत्र केवल वर्तमान को ही सत्य मानता है। भूत और भविष्य अर्थक्रियाहीन होने से उनको सत्य नहीं मानता।

शब्द, इन्द्र, शक्र, पुरन्दर आदि पर्याय शब्दों का एक ही अर्थ मानता है। इसी प्रकार लिंग, वचन, काल आदि भेदों से पृथक् अर्थ व्यक्त होते हैं, ऐसा भी मानता है।

समभिरूढ़ पर्याय शब्दों का एक ही अर्थ नहीं मानता। 'इन्द्र' शब्द ऐश्वर्यवाचक है, 'पुरन्दर' शब्द पुरविनाशक का वाचक है।

एवंभूत के अनुसार शब्द का सामान्य रूप अर्थ होता ही नहीं है। 'घट में पानी लाओ' इस वाक्य में जलाहरण संबंधी घट के धर्मों का ही बोध होता है, अन्य किसी धर्मों का नहीं।

सात नयों में पहिला नय सब से व्यापक है क्योंकि भावरूप और अभावरूप सारे पदार्थों का उसमें सामवेश होता है। दूसरा कम व्यापक है क्योंकि उसमें केवल सत्ता का सामवेश होता है। व्यवहार से केवल सद्विशेष का प्रकाश होता है। इस लिए वह संग्रह से कम व्यापक है। ऋजुसूत्र व्यवहार से भी कम व्यापक है क्योंकि उसमें भूत और भविष्य अन्तर्भाव नहीं होता। लिंग-वचन भेद से स्वभाव भेद मानने वाला शब्द ऋजुसूत्र से कम व्यापक है। पर्याय भेद से अर्थ भेद मानने वाला समभिरूढ़ शब्द से भी कम व्यापक है–प्रत्येक सन्दर्भ में उसी शब्द का अर्थभेद मानने वाला एवम्भूत बाकी सभी नयों से कम व्यापक है।

सात भंग

इस प्रकार 'नय' सीमित दृष्टिकोण है और कोई भी वाक्य किसी दृष्टिकोण से ही सत्य होता है। अगर सर्वथा सत्य वाक्य कहना हो तो सप्तभंगी नामक सात प्रकार के वाक्यों की रचना करनी पड़ती है।

एक ही वस्तु के बारे में सत्ता आदि एक-एक धर्म के विषय में विधि और निषेध इनकी एकत्र और पृथक् जाँच करके स्याद् शब्द के साथ जो प्रयोग होता है उसको सप्तभंगी कहते हैं।

(१) सर्वत्र विधि की कल्पना करना यह पहला भंग हुआ। स्यादस्ति।

(२) सर्वत्र निषेध की कल्पना करना, यह दूसरा भंग हुआ। स्यान्नास्ति।

(३) विधि और निषेध इनकी क्रम से कल्पना करना यह तीसरा भंग हुआ। स्यादस्ति स्यान्नास्ति।

(४) एक साथ ही विधि और निषेध इनकी कल्पना करना असम्भव है। इस लिये ऐसी कल्पना से चौथा भंग होता है। स्यादवक्तव्यम्

(५) पहले विधि की कल्पना करके फिर एक साथ ही विधि और निषेधों की कल्पना करने से पांचवां भंग होता है। स्यादस्ति स्यादवक्तव्यम्।

(६) पहले निषेध की कल्पना करके बाद में एक साथ ही विधि-निषेध की कल्पना करने से छठवाँ भंग होता है। स्यादस्ति स्यादवक्तव्यम्।

(७) पहले क्रम से विधि और निषेध की कल्पना करके बाद में एक साथ ही उनकी कल्पना करने से सातवां भंग होता है। स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवस्यादवक्तव्यमेव।

वस्तुओं का स्वरूप भावाभावरूप होता है, क्योंकि हरेक वस्तु स्वरूप से सत् और पररूप से असत् रहती है। घट लाल है, यह वाक्य घट की सत्ता घोषित करता है, और घट पट नहीं है, यह वाक्य घट की असत्ता भी घोषित करता, अगर कोई भी वस्तु सर्वात्मना सत् या असत् रहे तो उसका कोई स्वरूप ही नहीं रहेगा। घटों से समानता और घटेतर पदार्थों से भिन्नता यही घट का स्वरूप है।

कुम्भादि पदार्थ स्वरूप से, स्वक्षेत्र में और स्वकाल में अस्तित्ववान् रहते हैं और पररूप, परक्षेत्र, और परकाल में अस्तित्व में नहीं रहते। इसलिये उनका अस्तित्व एकान्तिक नहीं है। अस्तित्व के पहले लगाया गया स्यात् शब्द इसी का द्योतक है। इसी प्रकार नास्तित्व के पहले भी स्याद् शब्द का प्रयोग किया गया है।

एक ही साथ अस्ति और नास्ति इनकी कल्पना नहीं होती, इसलिये उसको अवक्तव्य कहा गया है। परन्तु यह अवक्तव्यता भी एकान्तिक नहीं है, क्योंकि अवक्तव्य शब्द से उसका उल्लेख होता है।

पदार्थ के धर्म अनन्त हैं, इसलिये सात ही प्रकार के भंग मानना ठीक नहीं है, ऐसा कोई कहे तो उसका उत्तर यह है कि प्रत्येक धर्म का उल्लेख सात ही प्रकार का होता है। इस लिये अनन्त धर्मों का उल्लेख अनन्त सप्तभंगियों से ही करना पड़ेगा।

उदाहरणार्थ सदसत् के समान सामान्य और विशेष के बारे में भी सात ही प्रकार के उल्लेख हो सकते हैं। जैसे घट घटत्वरूप से सामान्य और विशेष दोनों होने से अवक्तव्य भी है।

हरेक भंग के बारे में जिज्ञासा और सन्देह भी सात ही प्रकार के हो सकते हैं।

सकलादेश और विकलादेश:

हरेक भंग सकलादेश या विकलादेश हो सकता है।

अनन्तधर्मात्मक वस्तु का सप्रमाण ज्ञान होने पर, काल आदियों के अभेदवृत्ति के प्राधान्य से या गौणत्व से एक साथ ही प्रतिपादन करना सकलादेश है।

जो एक साथ ही अशेष धर्मात्मक वस्तु को काल आदियों से प्रधानत: या उपचारत: भिन्न प्रतिपादित करता है वह सकलादेश है। यह प्रमाण वाक्य है। यह प्रमाणाधीन है। विकलादेश अशेषधर्मात्मक वस्तु को प्रधानत: या उपचारत: काल आदियों से भिन्न प्रतिपादित करता है। यह नयवाक्य है।

जब अस्तित्वादि धर्मों का काल से भेद विवक्षित रहता है तब एक साथ ही अनेक अर्थ प्रद्योत कराने की एक ही शब्द में शक्ति न होने से क्रम की आवश्यकता होती है। जब उन्हीं

धर्मों का कालादिकों से अभेद विवक्षित रहता है तब एक ही शब्द से यह प्रतिपादन हो सकता है। यह यौगपद्य है।

कालादिक निम्नलिखित हैं–

(१) काल (२) आत्मरूप (३) अर्थ (४) सम्बन्ध (५) उपकार (६) गुणादेश (७) संसर्ग (८) शब्द।

'स्याज्जीवादी वस्तु अस्त्येव' इस वाक्य में जिस काल में अस्तित्व है उसी काल वस्तु में अशेष अनन्त धर्म बताये गये हैं। इस लिये यह काल से अभेदवृत्ति हुई। जो अस्तित्व का तद्गुण आत्मरूप होता है वही अन्य अनन्त गुणों का भी होता है, यह आत्मरूप से अभेद-वृत्ति हुई। जो द्रव्य अस्तित्व का आधार है वही अन्य पदार्थों का भी आधार है, यह अर्थ से अभेदवृत्ति हुई। अस्तित्व का जो तादात्म्यरूप सम्बन्ध है वही दूसरे विशेषों का भी है। यह सम्बन्ध से अभेदवृत्ति हुई। अस्तित्व से स्वानुरक्त करना यह जो अस्तित्व का उपकार है वही शेष गुणों का भी है, यह उपकार से अभेदवृत्ति हुई। जो अस्तित्व का गुणी से असम्बन्धित स्थान होता है वही दूसरे गुणों का भी होता है, यह गुणिदेश से अभेदवृत्ति हुई। एक वस्तु के रूप में जो अस्तित्व का संसर्ग होता है वही शेष धर्मों का भी होता है, यह संसर्ग में अभेद-वृत्ति हुई। अविष्वक्भाव में अभेद प्रधान होता है और भेद गौण होता है। संसर्ग में भेद प्रधान और अभेद गौण होता है। जो अस्तित्व शब्द अस्तित्व धर्म का वाचक है वही शेष अनन्तधर्मों का भी वाचक है। यह शब्द से अभेद वृत्ति हुई।

जब द्रव्यनय प्रधान होता है तब गुणों की भिन्नता प्रतीत होती है। नानागुणों संबंधी आत्मरूप भिन्न होता है। स्वाश्रय जो अर्थ है वही नाना हो गया। अन्यथा वह नानागुणों का आश्रय नहीं हो सकता। संबन्धी भिन्न होने से सम्बन्ध भिन्न होता है। उन दूवारा किया उपकार भी अनेक प्रकार का होता है। अन्यथा अन्यद्रव्यों के गुणों का भी गुणिदेश भिन्न न होगा। संसर्गी भिन्न होने से संसर्ग भी भिन होता है। भिन्न गुणों के वाचक शब्द भी भिन्न होते हैं।

आलोचना

अभी तक हमने स्याद्वाद का स्पष्टीकरण करने का प्रयत्न किया है। अब उसके प्रमुख सिद्धान्तों की आलोचना पर ध्यान देना चाहिए। इस सम्बन्ध में भी शंकराचार्य के आक्षेपों की चर्चा करना आवश्यक है।

श्री शङ्कराचार्य जी कहते हैं, अगर सब कुछ अनेकान्त है तो 'सब कुछ अनेकात्मक है' यह निर्धारण भी अनेकान्त हो जायेगा। अर्थात् अनेकान्तवाद भी किसी एक दृष्टि से सही और किसी और दृष्टि से गलत मानना पड़ेगा।

मेरे विचार से यह आक्षेप समर्थनीय है। क्योंकि मेरे कहे सारे वाक्य गलत है, ऐसा कहना वदतोव्याघात है। मेरा उपर्युक्त वाक्य सही हो तभी मेरे बाकी सब वाक्य गलत

* निरकुशं हि अनेकान्तत्वं सर्व वस्तुषु प्रतिजानानस्य निर्धारणस्यापि वस्तुत्वाविशेषात्स्यादस्ति स्यान्नास्तीत्यादि विकल्पोपनिपातादनि धारणात्यकतैव स्यात्। अध्याय २, अधिकरण ६, सूत्र ३३।

हो सकते हैं। अर्थात् इस वाक्य की सत्यता 'मेरा कम-से-कम एक वाक्य सही है' ऐसा मानने से स्थापित होती है।

अगर मेरा एक वाक्य सही हो सकता है तो और भी वाक्य सही क्यों नहीं हो सकते? इसी प्रकार अगर 'सब कुछ अनेकान्त है' यह निर्धारण एकान्त हो सकता है तो और भी निर्धारण एकान्त क्यों नहीं हो सकते?

स्याद्वाद जिस को वस्तु की अनेकान्तता कहता है वह वास्तव में वस्तु के अनेकविधि सम्बन्ध हैं। जैसे 'अ' यह एक ही व्यक्ति,ब का पिता, ई का पति और 'आ' का पुत्र हो सकता है। इसी प्रकार नारीत्व यह मानवत्व के सम्बन्ध से विशेष और सीता, द्रौपदी इत्यादियों के सम्बन्ध से सामान्य होता है। इसमें दृष्टिकोण का कोई भी प्रयोजन नहीं।

नित्यता और क्षणिकता, असत्कार्य और सत्कार्य इन दोनों का समर्थन हो सकता है, यह बात अनेकान्तवाद की समर्थक नहीं। यह परस्पर विरोधी युक्तिवाद शब्द के अर्थ निश्चित न होने से अवसर पाते हैं। "यह वही पदार्थ है" इस प्रत्यभिज्ञा का क्या आधार है, 'वही' का अनुभव होने के लिये '$अ_1$' और '$अ_2$' में कितना साम्य होना चाहिये, इस पर रुचि-वशात् मतभेद हो सकता है। इस मतभेद से ही "वही वस्तु क्षण से ज्यादा अस्तित्व में रहती है या नहीं" इस पर भी मतभेद होता है।

सत्कार्यवाद में भी 'वही' के बारे में जो विप्रतिपत्तियां हैं वे बाध मूलक होती हैं। क्या बीज में जो वृक्ष का रूप रहता है उसको वृक्ष कहा जाय या नहीं, इस प्रश्न का उत्तर रुचि-वशात् भिन्न हो सकता है।

सत्कार्यवाद के जो युक्तिवाद ऐसी मतभिन्नता पर निर्भर नहीं उनका खण्डन किया जा सकता है। यह प्रयत्न मैंने अपने 'सांख्यदर्शन के प्रमुख सिद्धान्त' शीर्षक निबन्ध में किया है। प्रस्तुत निबन्ध के फलित निम्नलिखित हैं।

(१) एक ही वस्तु सामान्य और विशेष, सत् और असत् किस प्रकार होती है, इसका अनेकान्तवाद ने स्पष्टीकरण किया है -

(२) नित्यतावाद और क्षणिकतावाद, सत्कार्यवाद और असत्कार्यवाद इन दोनों का समर्थन हो सकता है, यह दिखा कर स्याद्वाद वस्तु की अनेकान्तता को दृढ़ करता है।

(३) स्याद्वाद की मान्यता में वस्तु की अनेकान्तता अनेक दृष्टिकोणों पर निर्भर है।

(४) 'असत्यभाषी विरोधाभास' (Liar's Paradox) से आपत्ति-खण्डन होता है।

(५) अनेकान्तता दृष्टिकोणों से नहीं बल्कि सापेक्षता से निष्पन्न होती है।

(६) परस्पर विरोधी सिद्धान्तों का समर्थन शब्दों के अर्थ निश्चित न होने से हो सकता है।

उद्धरण

(१) प्रभाचन्द्र — प्रमेयकमलमार्तण्ड, द्वितीयवृत्ति निर्णयसागर।
(२) मल्लिषेण — स्याद्वादमंजरी।
(३) शंकर — ब्रह्मसूत्र भाष्य।
(४) हेमचन्द्र — वीतरागस्तुति (स्याद्वाद मंजरी व्याख्यान)।